—कि ग़ज़लों को भूमिका की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए, लेकिन एक कैफ़ियत इनकी भाषा के बारे में ज़रूरी है। कुछ उर्दू-दाँ दोस्तों ने कुछ उर्दू शब्दों के प्रयोग पर एतराज़ किया है। उनका कहना है कि शब्द 'शहर' नहीं 'शह्र' होता है, 'वज़न' नहीं 'वज़्न' होता है।

—कि मैं उर्दू नहीं जानता, लेकिन इन शब्दों का प्रयोग यहाँ अज्ञानतावश नहीं, जानबूझकर किया गया है। यह कोई मुश्किल काम नहीं था कि 'शहर' की जगह 'नगर' लिखकर इस दोष से मुक्ति पा लूँ, किंतु मैंने उर्दू शब्दों को उस रूप में इस्तेमाल किया है, जिस रूप में वे हिंदी में घुल-मिल गए हैं। उर्दू का 'शह्र' हिंदी में 'शहर' लिखा और बोला जाता है; ठीक उसी तरह जैसे हिंदी का 'ब्राह्मण' उर्दू में 'बिरहमन' हो गया है और 'ऋतु' 'रुत' हो गई है।

—कि उर्दू और हिंदी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती हैं तो उनमें फ़र्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। मेरी नीयत और कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज़्यादा से ज़्यादा क़रीब ला सकूँ। इसलिए ये ग़ज़लें उस भाषा में कही गई हैं, जिसे मैं बोलता हूँ।

—कि ग़ज़ल की विधा एक बहुत पुरानी, किंतु सशक्त विधा है, जिसमें बड़े-बड़े उर्दू महारथियों ने काव्य-रचना की है। हिंदी में भी महाकवि निराला से लेकर आज के गीतकारों और नए कवियों तक अनेक कवियों ने इस विधा को आज़माया है। परंतु अपनी सामर्थ्य और सीमाओं को जानने के बावजूद इस विधा में उतरते हुए मुझे आज भी संकोच तो है, पर उतना नहीं जितना होना चाहिए था। शायद इसका कारण ये है कि पत्र-पत्रिकाओं में इस संग्रह की कुछ ग़ज़लें पढ़कर और सुनकर विभिन्न वादों, रुचियों और वर्गों की सृजनशील प्रतिभाओं ने अपने पत्रों, मन्तव्यों एवं टिप्पणियों से मुझे एक सुखद आत्म-विश्वास दिया है। इस नाते मैं उन सबका अत्यंत आभारी हूँ।

...और कमलेश्वर ! वह इस अफ़साने में न होता तो ये सिलसिला शायद यहाँ तक न आ पाता। मैं तो—

हाथों में अंगारों को लिये सोच रहा था,
कोई मुझे अंगारों की तासीर बताए।

—दुष्यन्त कुमार

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।

यहाँ दरख़्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।

न हो कमीज़ तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफ़र के लिए।

खुदा नहीं, न सही, आदमी का ख़्वाब सही,
कोई हसीन नज़ारा तो है नज़र के लिए।

वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेक़रार हूँ आवाज़ में असर के लिए।

तेरा निज़ाम है सिल दे ज़ुबान शायर को,
ये एहतियात ज़रूरी है इस बहर के लिए।

जिएँ तो अपने बग़ीचे में गुलमोहर के तले,
मरें तो ग़ैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।

कैसे मंज़र सामने आने लगे हैं,
गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं।

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।

वो सलीबों के क़रीब आए तो हमको,
क़ायदे-क़ानून समझाने लगे हैं।

एक क़ब्रिस्तान में घर मिल रहा है,
जिसमें तहख़ानों से तहख़ाने लगे हैं।

मछलियों में खलबली है, अब सफ़ीने,
उस तरफ़ जाने से कतराने लगे हैं।

मौलवी से डाँट खाकर अहले मक़तब,
फिर उसी आयत को दोहराने लगे हैं।

अब नयी तहज़ीब के पेशे-नज़र हम,
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं।

ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा,
मैं सजदे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा।

यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।

ग़ज़ब ये है कि अपनी मौत की आहट नहीं सुनते,
वो सब-के-सब परीशाँ हैं वहाँ पर क्या हुआ होगा।

तुम्हारे शहर में ये शोर सुन-सुनकर तो लगता है,
कि इन्सानों के जंगल में कोई हाँका हुआ होगा।

कई फ़ाके बिताकर मर गया, जो उसके बारे में,
वो सब कहते हैं अब, ऐसा नहीं, ऐसा हुआ होगा।

यहाँ तो सिर्फ़ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,
ख़ुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।

चलो, अब यादगारों की अँधेरी कोठरी खोलें,
कम-अज़-कम एक वो चेहरा तो पहचाना हुआ होगा।

अपने मित्र के.पी. शुंगलु को समर्पित, जिसने मतले का विचार दिया।

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।

एक चिनगारी कहीं से ढूँढ़ लाओ दोस्तो,
इस दीये में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

एक खँडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी,
आदमी की पीर गूँगी ही सही, गाती तो है।

एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है।

निर्वचन मैदान में लेटी हुई है जो नदी,
पत्थरों से, ओट में जो-जाके बतियाती तो है।

दुख नहीं कोई कि अब उपलब्धियों के नाम पर,
और कुछ हो या न हो, आकाश-सी छाती तो है।

देख, दहलीज से काई नहीं जाने वाली,
ये ख़तरनाक सचाई नहीं जाने वाली।

कितना अच्छा है कि साँसों की हवा लगती है,
आग अब उनसे बुझाई नहीं जाने वाली।

एक तालाब-सी भर जाती है हर बारिश में,
मैं समझता हूँ ये खाई नहीं जाने वाली।

चीख़ निकली तो है होंठों से, मगर मद्धम है,
बंद कमरों को सुनाई नहीं जाने वाली।

तू परेशान बहुत है, तू परेशान न हो,
इन ख़ुदाओं की ख़ुदाई नहीं जाने वाली।

आज सड़कों पे चले आओ तो दिल बहलेगा,
चंद ग़ज़लों से तन्हाई नहीं जाने वाली।

खँडहर बचे हुए हैं, इमारत नहीं रही,
अच्छा हुआ कि सर पे कोई छत नहीं रही।

कैसी मशालें लेके चले तीरगी में आप,
जो रोशनी थी वो भी सलामत नहीं रही।

हमने तमाम उम्र अकेले सफ़र किया,
हम पर किसी ख़ुदा की इनायत नहीं रही।

मेरे चमन में कोई नशेमन नहीं रहा,
या यूँ कहो कि बर्क़ की दहशत नहीं रही।

हमको पता नहीं था हमें अब पता चला,
इस मुल्क में हमारी हुकूमत नहीं रही।

कुछ दोस्तों से वैसे मरासिम नहीं रहे,
कुछ दुश्मनों से वैसी अदावत नहीं रही।

हिम्मत से सच कहो तो बुरा मानते हैं लोग,
रो-रो के बात कहने की आदत नहीं रही।

सीने में ज़िन्दगी के अलामात हैं अभी,
गो ज़िन्दगी की कोई ज़रूरत नहीं रही।

परिन्दे अब भी पर तोले हुए हैं,
हवा में सनसनी घोले हुए हैं।

तुम्हीं कमज़ोर पड़ते जा रहे हो,
तुम्हारे ख़्वाब तो शोले हुए हैं।

ग़ज़ब है सच को सच कहते नहीं वो,
क़ुरानो-उपनिषद खोले हुए हैं।

मज़ारों से दुआएँ माँगते हो,
अक़ीदे किस क़दर पोले हुए हैं।

हमारे हाथ तो काटे गए थे,
हमारे पाँव भी छोले हुए हैं।

कभी कश्ती, कभी बतख़, कभी जल,
सियासत के कई चोले हुए हैं।

हमारा क़द सिमट कर घट गया है,
हमारे पैरहन झोले हुए हैं।

चढ़ाता फिर रहा हूँ जो चढ़ावे,
तुम्हारे नाम पर बोले हुए हैं।

अपाहिज व्यथा को वहन कर रहा हूँ,
तुम्हारी कहन थी, कहन कर रहा हूँ।

ये दरवाज़ा खोलो तो खुलता नहीं है,
इसे तोड़ने का जतन कर रहा हूँ।

अँधेरे में कुछ ज़िन्दगी होम कर दी,
उजाले में अब ये हवन कर रहा हूँ।

वे सम्बन्ध अब तक बहस में टँगे हैं,
जिन्हें रात-दिन स्मरण कर रहा हूँ।

तुम्हारी थकन ने मुझे तोड़ डाला,
तुम्हें क्या पता क्या सहन कर रहा हूँ।

मैं अहसास तक भर गया हूँ लबालब,
तेरे आँसुओं को नमन कर रहा हूँ।

समालोचकों की दुआ है कि मैं फिर,
सरे शाम से आचमन कर रहा हूँ।

भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आजकल दिल्ली में है ज़ेरे बहस ये मुद्दआ।

मौत ने तो धर दबोचा एक चीते की तरह,
ज़िन्दगी ने जब छुआ तब फ़ासला रखकर छुआ।

गिड़गिड़ाने का यहाँ कोई असर होता नहीं,
पेट भरकर ग़ालियाँ दो, आह भरकर बद्दुआ।

क्या वजह है प्यास ज़्यादा तेज़ लगती है यहाँ,
लोग कहते हैं कि पहले इस जगह पर था कुआँ।

आप दस्ताने पहनकर छू रहे हैं आग को,
आपके भी ख़ून का रंग हो गया है साँवला।

इस अँगीठी तक गली से कुछ हवा आने तो दो,
जब तलक खिलते नहीं, ये कोयले देंगे धुआँ।

दोस्त, अपने मुल्क की क़िस्मत पे रंजीदा न हो,
उनके हाथों में है पिंजरा, उनके पिंजरे में सुआ।

इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात,
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ।

फिर धीरे-धीरे यहाँ का मौसम बदलने लगा है,
वातावरण सो रहा था अब आँख मलने लगा है।

पिछले सफर की न पूछो, टूटा हुआ एक रथ है,
जो रुक गया था कहीं पर, फिर साथ चलने लगा है।

हमको पता भी नहीं था, वो आग ठंडी पड़ी थी,
जिस आग पर आज पानी सहसा उबलने लगा है।

जो आदमी मर चुके थे, मौजूद हैं इस सभा में,
हर एक सच कल्पना से आगे निकलने लगा है।

ये घोषणा हो चुकी है, मेला लगेगा यहाँ पर,
हर आदमी घर पहुँचकर, कपड़े बदलने लगा है।

बातें बहुत हो रही हैं, मेरे-तुम्हारे विषय में,
जो रास्ते में खड़ा था पर्वत पिघलने लगा है।

कहीं पे धूप की चादर बिछाके बैठ गए,
कहीं पे शाम सिरहाने लगाके बैठ गए।

जले जो रेत में तलुवे तो हमने ये देखा,
बहुत-से लोग वहीं छटपटाके बैठ गए।

खड़े हुए थे अलावों की आँच लेने को,
सब अपनी-अपनी हथेली जलाके बैठ गए।

दुकानदार तो मेले में लुट गए यारो !
तमाशबीन दुकानें लगाके बैठ गए।

लहू-लुहान नज़ारों का जिक्र आया तो,
शरीफ़ लोग उठे दूर जाके बैठ गए।

ये सोचकर कि दरख़्तों में छाँव होती है,
यहाँ बबूल के साये में आके बैठ गए।

घंटियों की गूँज कानों तक पहुँचती है,
एक नदी जैसे दहानों तक पहुँचती है।

अब इसे क्या नाम दें, ये बेल देखो तो,
कल उगी थी, आज शानों तक पहुँचती है।

खिड़कियाँ, नाचीज़ गलियों से मुख़ातिब हैं,
अब लपट शायद मकानों तक पहुँचती है।

आशियाने को सजाओ तो समझ लेना,
बर्क़ कैसे आशियानों तक पहुँचती है।

तुम हमेशा बदहवासी में गुज़रते हो,
बात अपनों से बिरानों तक पहुँचती है।

सिर्फ़ आँखें ही बची हैं चंद चेहरों में,
बेज़ुबाँ सूरत, ज़ुबानों तक पहुँचती है।

अब मुअज़्ज़न की सदाएँ कौन सुनता है,
चीख़-चिल्लाहट अज़ानों तक पहुँचती है।

नज़र-नवाज़ नज़ारा बदल न जाए कहीं,
ज़रा-सी बात है मुँह से निकल न जाए कहीं।

वो देखते हैं तो लगता है नींव हिलती है,
मेरे बयान को बंदिश निगल न जाए कहीं।

यों मुझको खुद पे बहुत ऐतबार है लेकिन,
ये बर्फ़ आँच के आगे पिघल न जाए कहीं।

चले हवा तो किवाड़ों को बंद कर लेना,
ये गर्म राख शरारों में ढल न जाए कहीं।

तमाम रात तेरे मैकदे में मय पी है,
तमाम उम्र नशे में निकल न जाए कहीं।

कभी मचान पे चढ़ने की आरज़ू उभरी,
कभी ये डर कि ये सीढ़ी फिसल न जाए कहीं।

ये लोग होमो-हवन में यक़ीन रखते हैं,
चलो यहाँ से चलें, हाथ जल न जाए कहीं।

तूने ये हरसिंगार हिलाकर बुरा किया,
पाँवों की सब ज़मीन को फूलों से ढँक दिया।

किससे कहें कि छत की मुँडेरों से गिर पड़े,
हमने ही ख़ुद पतंग उड़ाई थी शौक़िया।

अब सबसे पूछता हूँ बताओ तो कौन था,
वो बदनसीब शख़्स जो मेरी जगह जिया।

मुँह को हथेलियों में छिपाने की बात है,
हमने किसी अंगार को होंठों से छू लिया।

घर से चले तो राह में आकर ठिठक गए,
पूरी हुई रदीफ़ अधूरा है क़ाफ़िया।

मैं भी तो अपनी बात लिखूँ अपने हाथ से,
मेरे सफ़े पे छोड़ दे थोड़ा-सा हाशिया।

इस दिल की बात कर तो सभी दर्द मत उँडेल
अब लोग टोकते हैं ग़ज़ल है कि मर्सिया।

मत कहो, आकाश में कुहरा घना है,
यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।

सूर्य हमने भी नहीं देखा सुबह से,
क्या करोगे, सूर्य का क्या देखना है।

इस सड़क पर इस क़दर कीचड़ बिछी है,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।

पक्ष औ' प्रतिपक्ष संसद में मुखर हैं,
बात इतनी है कि कोई पुल बना है।

रक्त वर्षों से नसों में खौलता है,
आप कहते हैं क्षणिक उत्तेजना है।

हो गई हर घाट पर पूरी व्यवस्था,
शौक से डूबे जिसे भी डूबना है।

दोस्तो ! अब मंच पर सुविधा नहीं है,
आजकल नेपथ्य में सम्भावना है।

चाँदनी छत पे चल रही होगी,
अब अकेली टहल रही होगी।

फिर मेरा ज़िक्र आ गया होगा,
वो बरफ़-सी पिघल रही होगी।

कल का सपना बहुत सुहाना था,
ये उदासी न कल रही होगी।

सोचता हूँ कि बंद कमरे में,
एक शमआ-सी जल रही होगी।

शहर की भीड़-भाड़ से बचकर,
तू गली से निकल रही होगी।

आज बुनियाद थरथराती है,
वो दुआ फूल-फल रही होगी।

तेरे गहनों-सी खनखनाती थी,
बाजरे की फ़सल रही होगी।

जिन हवाओं ने तुझको दुलराया,
उनमें मेरी ग़ज़ल रही होगी।

ये रोशनी है हक़ीकत में एक छल लोगो,
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगो।

दरख़्त हैं तो परिन्दे नज़र नहीं आते,
जो मुस्तहक़ हैं वही हक़ से बेदख़ल लोगो।

वो घर में मेज़ पे कोहनी टिकाये बैठी है,
थमी हुई है वहीं उम्र आजकल लोगो।

किसी भी क़ौम की तारीख़ के उजाले में,
तुम्हारे दिन हैं किसी रात की नक़ल लोगो।

तमाम रात रहा महवे-ख़्वाब दीवाना,
किसी की नींद में पड़ता रहा ख़लल, लोगो।

ज़रूर वो भी इसी रास्ते से गुज़रे हैं,
हर आदमी मुझे लगता है हम-शक्ल लोगो।

दिखे जो पाँवों के ताज़ा निशान सहरा में,
तो याद आए हैं तालाब के कँवल लोगो।

वे कह रहे हैं ग़ज़लगो नहीं रहे शायर,
मैं सुन रहा हूँ हरेक सिम्त से ग़ज़ल लोगो।

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।

सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

आज सड़कों पर लिखे हैं सैकड़ों नारे न देख,
घर अँधेरा देख तू, आकाश के तारे न देख।

एक दरिया है यहाँ पर दूर तक फैला हुआ,
आज अपने बाजुओं को देख, पतवारें न देख।

अब यक़ीनन ठोस है धरती हक़ीक़त की तरह,
यह हक़ीक़त देख लेकिन ख़ौफ़ के मारे न देख।

वे सहारे भी नहीं अब, जंग लड़नी है तुझे,
कट चुके जो हाथ, उन हाथों में तलवारें न देख।

दिल को बहला ले, इजाज़त है, मगर इतना न उड़,
रोज़ सपने देख, लेकिन इस क़दर प्यारे न देख।

ये धुँधलका है नज़र का, तू महज़ मायूस है,
रोजनों को देख, दीवारों में दीवारें न देख।

राख, कितनी राख है, चारों तरफ़ बिखरी हुई,
राख में चिनगारियाँ ही देख, अंगारे न देख।

मरना लगा रहेगा यहाँ जी तो लीजिए,
ऐसा भी क्या परहेज, ज़रा-सी तो लीजिए।

अब रिन्द बच रहे हैं ज़रा तेज़ रक्स हो,
महफ़िल से उठ लिये हैं नमाज़ी तो लीजिए।

पत्तों से चाहते हो बजें साज़ की तरह,
पेड़ों से आप पहले उदासी तो लीजिए।

ख़ामोश रह के तुमने हमारे सवाल पर,
कर दी है शहर भर में मनादी तो लीजिए।

ये रोशनी का दर्द ये सिहरन, ये आरज़ू,
ये चीज़ ज़िन्दगी में नहीं थी तो लीजिए।

फिरता है कैसे कैसे खयालों के साथ वो,
उस आदमी की जामातलाशी तो लीजिए।

पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी,
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी।

लपट आने लगी है अब हवाओं में,
ओसारे और छप्पर फेंक दो तुम भी।

यहाँ मासूम सपने जी नहीं पाते,
इन्हें कुंकुम लगाकर फेंक दो तुम भी।

तुम्हें भी इस बहाने याद कर लेंगे।
इधर दो-चार पत्थर फेंक दो तुम भी।

ये मूरत बोल सकती है अगर चाहो,
अगर कुछ शब्द कुछ स्वर फेंक दो तुम भी।

किसी संवेदना के काम आएँगे,
यहाँ टूटे हुए पर फेंक दो तुम भी।

इस रास्ते के नाम लिखो एक शाम और,
या इसमें रोशनी का करो इंतज़ाम और।

आँधी में सिर्फ़ हम ही उखड़कर नहीं गिरे,
हमसे जुड़ा हुआ था कोई एक नाम और।

मरघट में भीड़ है या मज़ारों पे भीड़ है,
अब गुल खिला रहा है तुम्हारा निज़ाम और।

घुटनों पे रख के हाथ खड़े थे नमाज़ में,
आ-जा रहे थे लोग ज़ेहन में तमाम और।

हमने भी पहली बार चखी तो बुरी लगी,
कड़वी तुम्हें लगेगी मगर एक जाम और।

हैरां थे अपने अक्स पे घर के तमाम लोग,
शीशा चटख़ गया तो हुआ एक काम और।

उनका कहीं जहाँ में ठिकाना नहीं रहा,
हमको तो मिल गया है अदब में मुक़ाम और।

मेरे गीत तुम्हारे पास सहारा पाने आएँगे,
मेरे बाद तुम्हें ये मेरी याद दिलाने आएँगे।

हौले-हौले पाँव हिलाओ, जल सोया है छेड़ो मत,
हम सब अपने-अपने दीपक यहीं सिराने आएँगे।

थोड़ी आँच बनी रहने दो, थोड़ा धुआँ निकलने दो,
कल देखोगी कई मुसाफ़िर इसी बहाने आएँगे।

उनको क्या मालूम विरूपित इस सिकता पर क्या बीती,
वे आए तो यहाँ शंख सीपियाँ उठाने आएँगे।

रह-रह आँखों में चुभती है पथ की निर्जन दोपहरी,
आगे और बढ़ें तो शायद दृश्य सुहाने आएँगे।

मेले में भटके होते तो कोई घर पहुँचा जाता,
हम घर में भटके हैं, कैसे ठौर-ठिकाने आएँगे।

हम क्या बोलें इस आँधी में कई घरौंदे टूट गए,
इन असफल निर्मितियों के शव कल पहचाने जाएँगे।

आज वीरान अपना घर देखा,
तो कई बार झाँक कर देखा।

पाँव टूटे हुए नज़र आए,
एक ठहरा हुआ सफ़र देखा।

होश में आ गए कई सपने,
आज हमने वो खँडहर देखा।

रास्ता काटकर गई बिल्ली,
प्यार से रास्ता अगर देखा।

नालियों में हयात देखी है,
गालियों में बड़ा असर देखा।

उस परिन्दे को चोट आई तो,
आपने एक-एक पर देखा।

हम खड़े थे कि ये जमी होगी,
चल पड़ी तो इधर-उधर देखा।

वो निगाहें सलीब हैं,
हम बहुत बदनसीब हैं।

आइए आँख मूँद लें,
ये नज़ारे अजीब हैं।

ज़िन्दगी एक खेत है,
और साँसें जरीब हैं।

सिलसिले ख़त्म हो गए,
यार अब भी रक़ीब हैं।

हम कहीं के नहीं रहे,
घाट औ' घर क़रीब हैं।

आपने लौ छुई नहीं,
आप कैसे अदीब हैं।

उफ़ नहीं की उजड़ गए,
लोग सचमुच ग़रीब हैं।

बायें से उड़के दाईं दिशा को गरुड़ गया,
कैसा शकुन हुआ है कि बरगद उखड़ गया।

इन खँडहरों में होंगी तेरी सिसकियाँ ज़रूर,
इन खँडहरों की ओर सफ़र आप मुड़ गया।

बच्चे छलाँग मार के आगे निकल गए,
रेले में फँसके बाप बिचारा बिछुड़ गया।

दुःख को बहुत सहेज के रखना पड़ा हमें,
सुख तो किसी कपूर की टिकिया-सा उड़ गया।

लेकर उमंग संग चले थे हँसी-खुशी,
पहुँचे नदी के घाट तो मेला उजड़ गया।

जिन आँसुओं का सीधा तआल्लुक़ था पेट से,
उन आँसुओं के साथ तेरा नाम जुड़ गया।

अफ़वाह है या सच है ये कोई नहीं बोला,
मैंने भी सुना है अब जाएगा तेरा डोला।

इन राहों के पत्थर भी मानूस थे पाँवों से,
पर मैंने पुकारा तो कोई भी नहीं बोला।

लगता है, खुदाई में कुछ तेरा दख़ल भी है,
इस शाम फ़िज़ाओं ने वो रंग नहीं घोला।

आख़िर तो अँधेरे की जागीर नहीं हूँ मैं,
इस राख में पिन्हा है अब तक भी वही शोला।

सोचा कि तू सोचेगी, तूने किसी शायर की,
दस्तक तो सुनी थी पर दरवाज़ा नहीं खोला।

अगर ख़ुदा न करे सच ये ख़्वाब हो जाए,
तेरी सहर हो मेरा आफ़ताब हो जाए।

हुज़ूर आरिज़ो-रुख़सार क्या तमाम बदन,
मेरी सुनो तो मुजस्सिम गुलाब हो जाए।

उठाके फेंक दो खिड़की से साग़रो-मीना,
ये तिश्नगी जो तुम्हें दस्तयाब हो जाए।

वो बात कितनी भली है जो आप करते हैं,
सुनी तो सीने की धड़कन रबाब हो जाए।

बहुत क़रीब न आओ यक़ीं नहीं होगा,
ये आरज़ू भी अगर कामयाब हो जाए।

ग़लत कहूँ तो मेरी आक़बत बिगड़त है,
जो सच कहूँ तो ख़ुदी बेनक़ाब हो जाए।

ज़िन्दगानी का कोई मक़सद नहीं है,
एक भी क़द आज आदमक़द नहीं है।

राम जाने किस जगह होंगे क़बूतर,
इस इमारत में कोई गुम्बद नहीं है।

आपसे मिलकर हमें अकसर लगा है,
हुस्न में अब जज्ब-ए-अमज़द नहीं है।

पेड़-पौधे हैं बहुत बौने तुम्हारे,
रास्तों में एक भी बरगद नहीं है।

मैकदे का रास्ता अब भी खुला है,
सिर्फ़ आमदरफ़्त ही जायद नहीं है।

इस चमन को देखकर किसने कहा था,
एक पंछी भी यहाँ शायद नहीं है।

ये सच है कि पाँवों ने बहुत कष्ट उठाए,
पर पाँव किसी तरह से राहों पे तो आए।

हाथों में अंगारों को लिये सोच रहा था,
कोई मुझे अंगारों की तासीर बताए।

जैसे किसी बच्चे को खिलौने न मिले हों,
फिरता हूँ कई यादों को सीने से लगाए।

चट्टानों से पाँवों को बचाकर नहीं चलते,
सहमे हुए पाँवों से लिपट जाते हैं साए।

यों पहले भी अपना-सा यहाँ कुछ तो नहीं था,
अब और नज़ारे हमें लगते हैं पराए।

बाढ़ की संभावनाएँ सामने हैं,
और नदियों के किनारे घर बने हैं।

चीड़-वन में आँधियों की बात मत कर,
इन दरख़्तों के बहुत नाजुक तने हैं।

इस तरह टूटे हुए चेहरे नहीं हैं,
जिस तरह टूटे हुए ये आईने हैं।

आपके क़ालीन देखेंगे किसी दिन,
इस समय तो पाँव कीचड़ में सने हैं।

जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में,
हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।

अब तड़पती-सी ग़ज़ल कोई सुनाए,
हमसफ़र ऊँघे हुए हैं, अनमने हैं।

जाने किस-किसका ख़याल आया है,
इस समंदर में उबाल आया है।

एक बच्चा था हवा का झोंका,
साफ़ पानी को खँगाल आया है।

एक ढेला तो वहीं अटका था,
एक तू और उछाल आया है।

कल तो निकला था बहुत सजधज के,
आज लौटा तो निढाल आया है।

ये नज़र है कि कोई मौसम है,
ये सबा है कि बबाल आया है।

इस अँधेरे में दीया रखना था,
तू उजाले में ही बाल आया है।

हमने सोचा था जवाब आएगा,
एक बेहूदा सवाल आया है।

ये ज़ुबाँ हमसे सी नहीं जाती,
ज़िन्दगी है कि जी नहीं जाती।

इन फ़सीलों में वो दरारें हैं,
जिनमें बसकर नमी नहीं जाती।

देखिए उस तरफ़ उजाला है,
जिस तरफ़ रोशनी नहीं जाती।

शाम कुछ पेड़ गिर गए वरना,
बाम तक चाँदनी नहीं जाती।

एक आदत-सी बन गई है तू,
और आदत कभी नहीं जाती।

मैकशो मय ज़रूर है लेकिन,
इतनी कड़वी कि पी नहीं जाती।

मुझको ईसा बना दिया तुमने,
अब शिकायत भी की नहीं जाती।

तुमको निहारता हूँ सुबह से ऋतम्बरा,
अब शाम हो रही है मगर मन नहीं भरा।

ख़रगोश बन के दौड़ रहे हैं तमाम ख़्वाब,
फिरता है चाँदनी में कोई सच डरा-डरा।

पौधे झुलस गए हैं मगर एक बात है,
मेरी नज़र में अब भी चमन है हरा-भरा।

लंबी सुरंग-सी है तेरी ज़िन्दगी तो बोल,
मैं जिस जगह खड़ा हूँ वहाँ है कोई सिरा।

माथे पे रखके हाथ बहुत सोचते हो तुम,
गंगा क़सम बताओ हमें क्या है माजरा।

रोज़ जब रात को बारह का गजर होता है,
यातनाओं के अँधेरे में सफ़र होता है।

कोई रहने की जगह है मेरे सपनों के लिए,
वो घरौंदा सही, मिट्टी का भी घर होता है।

सिर से सीने में कभी, पेट से पाँवों में कभी,
एक जगह हो तो कहें दर्द इधर होता है।

ऐसा लगता है कि उड़कर भी कहाँ पहुँचेंगे,
हाथ में जब कोई टूटा हुआ पर होता है।

सैर के वास्ते सड़कों पे निकल आते थे,
अब तो आकाश से पथराव का डर होता है।

हालाते जिस्म, सूरते जां, और भी ख़राब,
चारों तरफ़ ख़राब, यहाँ और भी ख़राब।

नज़रों में आ रहे हैं नज़ारे बहुत बुरे,
होंठों में आ रही है ज़ुबाँ और भी ख़राब।

पाबंद हो रही है रवायत से रोशनी,
चिमनी में घुट रहा है धुआँ और भी ख़राब।

मूरत सँवारने में बिगड़ती चली गई,
पहले से हो गया है जहाँ और भी ख़राब।

रौशन हुए चिराग़ तो आँखें नहीं रहीं,
अंधों को रोशनी का गुमां और भी ख़राब।

आगे निकल गए हैं घिसटते हुए क़दम,
राहों में रह गए हैं निशां और भी ख़राब।

सोचा था उनके देश में महँगी है ज़िन्दगी,
पर ज़िन्दगी का भाव वहाँ और भी ख़राब।

ये जो शहतीर है पलकों पे उठा लो यारो,
अब कोई ऐसा तरीक़ा भी निकालो यारो।

दर्दे दिल वक़्त को पैग़ाम भी पहुँचाएगा,
इस क़बूतर को ज़रा प्यार से पालो यारो।

लोग हाथों में लिये बैठे हैं अपने पिंजरे,
आज सय्याद को महफ़िल में बुला लो यारो।

आज सीवन को उधेड़ो तो ज़रा देखेंगे,
आज संदूक से वे ख़त तो निकालो यारो।

रहनुमाओं की अदाओं पे फ़िदा है दुनिया,
इस बहकती हुई दुनिया को सँभालो यारो।

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।

लोग कहते थे कि ये बात नहीं कहने की,
तुमने कह दी है तो कहने की सज़ा लो यारो।

धूप ये अठखेलियाँ हर रोज़ करती है,
एक छाया सीढ़ियाँ चढ़ती-उतरती है।

ये दीया चौरास्ते का ओट में ले लो,
आज आँधी गाँव से होकर गुज़रती है।

कुछ बहुत गहरी दरारें पड़ गयीं मन में,
मीत अब ये मन नहीं है एक धरती है।

कौन शासन से कहेगा, कौन समझेगा,
एक चिड़िया इन धमाकों से सिहरती है।

मैं तुम्हें छूकर ज़रा-सा छेड़ देता हूँ,
और गीली पाँखुरी से ओस झरती है।

तुम कहीं पर झील हो, मैं एक नौका हूँ,
इस तरह की कल्पना मन में उभरती है।

पक गई है आदतें, बातों से सर होंगी नहीं,
कोई हंगामा करो, ऐसे गुज़र होगी नहीं।

इन ठिठुरती उँगलियों को इस लपट पर सेंक लो,
धूप अब घर की किसी दीवार पर होगी नहीं।

बूँद टपकी थी मगर वो बूँदो-बारिश और है,
ऐसी बारिश की कभी उनको ख़बर होगी नहीं।

आज मेरा साथ दो, वैसे मुझे मालूम है,
पत्थरों में चीख़ हरगिज कारगर होगी नहीं।

आपके टुकड़ों के टुकड़े कर दिए जाएँगे पर,
आपकी ताज़िम में कोई कसर होगी नही।

सिर्फ़ शायर देखता है क़हक़हों की असलियत,
हर किसी के पास तो ऐसी नज़र होगी नहीं।

एक क़बूतर, चिट्ठी लेकर, पहली-पहली बार उड़ा,
मौसम एक गुलेल लिये था पट से नीचे आन गिरा।

बंजर धरती, झुलसे पौधे, बिखरे काँटे, तेज़ हवा,
हमने घर बैठे-बैठे ही सारा मंज़र देख लिया।

चट्टानों पर खड़ा हुआ तो छाप रह गई पाँवों की,
सोचो कितना बोझ उठाकर मैं इन राहों से गुज़रा।

सहने को हो गया इकट्ठा इतना सारा दुख मन में,
कहने को हो गया कि देखो अब मैं तुमको भूल गया।

धीरे-धीरे भीग रही हैं सारी ईंटें पानी में,
इनको क्या मालूम कि आगे चलकर इनका क्या होगा।

ये धुएँ का एक घेरा कि मैं जिसमें रह रहा हूँ,
मुझे किस क़दर नया है, मैं जो दर्द सह रहा हूँ।

ये ज़मीन तप रही थी, ये मकान तप रहे थे,
तेरा इंतज़ार था जो मैं इसी जगह रहा हूँ।

मैं ठिठक गया था लेकिन तेरे साथ-साथ था मैं,
तू अगर नदी हुई तो मैं तेरी सतह रहा हूँ।

सर पे धूप आई तो दरख़्त बन गया मैं,
तेरी ज़िन्दगी में अकसर मैं कोई वजह रहा हूँ।

कभी दिल में आरज़ू-सा, कभी मुँह में बद्दुआ-सा,
मुझे जिस तरह भी चाहा, मैं उसी तरह रहा हूँ।

मेरे दिल पे हाथ रक्खो, मेरी बेबसी को समझो,
मैं इधर से बन रहा हूँ, मैं इधर से ढह रहा हूँ।

यहाँ कौन देखता है, यहाँ कौन सोचता है,
कि ये बात क्या हुई है जो मैं शेर कह रहा हूँ।

तुमने इस तालाब में रोहू पकड़ने के लिए,
छोटी-छोटी मछलियाँ चारा बनाकर फेंक दीं।

तुम ही खा लेते सुबह को भूख लगती है बहुत,
तुमने बासी रोटियाँ नाहक उठाकर फेंक दीं।

जाने कैसी उँगलियाँ हैं जाने क्या अंदाज़ हैं,
तुमने पत्तों को छुआ था जड़ हिलाकर फेंक दीं।

इस अहाते के अँधेरे में धुआँ-सा भर गया,
तुमने जलती लकड़ियाँ शायद बुझाकर फेंक दीं।

लफ़्ज एहसास-से छाने लगे, ये तो हद है,
लफ़्ज माने भी छुपाने लगे, ये तो हद है।

आप दीवार गिराने के लिए आए थे,
आप दीवार उठाने लगे, ये तो हद है।

ख़ामोशी शोर से सुनते थे कि घबराती है,
ख़ामोशी शोर मचाने लगे, ये तो हद है।

आदमी होंठ चबाए तो समझ आता है,
आदमी छाल चबाने लगे, ये तो हद है।

जिस्म पहरावों में छप जाते थे, पहरावों में—
जिस्म नंगे नज़र आने लगे, ये तो हद है।

लोग तहज़ीबों-तमद्दुन के सलीक़े सीखे,
लोग रोते हुए गाने लगे, ये तो हद है।

ये शफ़क़, शाम हो रही है अब,
और हर गाम हो रही है अब।

जिस तबाही से लोग बचते थे,
वो सरे आम हो रही है अब।

अज़मते मुल्क इस सियासत के,
हाथ नीलाम हो रही है अब।

शब गनीमत थी, लोग कहते हैं,
सुब्ह बदनाम हो रही है अब।

जो किरन थी किसी दरीचे की,
मरक़जे बाम हो रही है अब।

तिश्ना-लब तेरी फुसफुसाहट भी,
एक पैग़ाम हो रही है अब।

एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है,
आज शायर, ये तमाशा देखकर हैरान है।

ख़ास सड़कें बंद हैं तब से मरम्मत के लिए,
ये हमारे वक़्त की सबसे सही पहचान है।

एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो—
इस अँधेरी कोठरी में एक रौशनदान है।

मस्लहत आमेज़ होते हैं सियासत के क़दम,
तू न समझेगा सियासत तू अभी इनसान है।

इस क़दर पाबंदी-ए-मज़हब कि सदक़े आपके,
जब से आज़ादी मिली है मुल्क में रमज़ान है।

कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ,
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।

बहुत सँभाल के रक्खी तो पाएमाल हुई,
सड़क पे फेंक दी तो ज़िन्दगी निहाल हुई।

बड़ा लगाव है इस मोड़ से निगाहों को,
कि सबसे पहले यहीं रोशनी हलाल हुई।

कोई निजात की सूरत नहीं रही, न सही,
मगर निजात की कोशिश तो एक मिसाल हुई।

मेरे ज़ेहन पे ज़माने का वो दबाव पड़ा,
जो एक स्लेट थी वो ज़िन्दगी, सवाल हुई।

समुद्र और उठा, और उठा, और उठा,
किसी के वास्ते ये चाँदनी बबाल हुई।

उन्हें पता भी नहीं है कि उनके पाँवों से,
वो ख़ूँ बहा है कि ये गर्द भी गुलाल हुई।

मेरी ज़ुबान से निकली तो सिर्फ़ नज़्म बनी,
तुम्हारे हाथ में आई तो एक मशाल हुई।

वो आदमी नहीं है मुकम्मल बयान है,
माथे पे उसके चोट का गहरा निशान है।

वे कर रहे हैं इश्क़ पे संजीदा गुफ़्तगू,
मैं क्या बताऊँ मेरा कहीं और ध्यान है।

सामान कुछ नहीं है फटेहाल है मगर,
झोले में उसके पास कोई संविधान है।

उस सिरफिरे को यों नहीं बहला सकेंगे आप,
वो आदमी नया है मगर सावधान है।

फिसले जो इस जगह तो लुढ़कते चले गए,
हमको पता नहीं था कि इतना ढलान है।

देखे हैं हमने दौर कई अब ख़बर नहीं,
पाँवों तले ज़मीन है या आसमान है।

वो आदमी मिला था मुझे उसकी बात से
ऐसा लगा कि वो भी बहुत बेज़ुबान है।

किसी को क्या पता था इस अदा पर मर मिटेंगे हम,
किसी का हाथ उठा और अलकों तक चला आया।

वो बरगश्ता थे कुछ हमसे उन्हें क्योंकर यक़ीं आता,
चलो अच्छा हुआ एहसास पलकों तक चला आया।

जो हमको ढूँढ़ने निकला तो फिर वापस नहीं लौटा,
तसव्वुर ऐसे ग़ैर-आबाद हल्क़ों तक चला आया।

लगन ऐसी खरी थी तीरगी आड़े नहीं आई,
ये सपना सुब्ह के हल्के धुँधलकों तक चला आया।

होने लगी है जिस्म में जुंबिश तो देखिए,
इस परकटे परिन्दे की कोशिश तो देखिए।

गूँगे निकल पड़े हैं, ज़ुबाँ की तलाश में,
सरकार के ख़िलाफ़ ये साज़िश तो देखिए।

बरसात आ गई तो दरकने लगी ज़मीन,
सूखा मचा रही ये बारिश तो देखिए।

उनकी अपील है कि उन्हें हम मदद करें,
चाकू की पसलियों से गुज़ारिश तो देखिए।

जिसने नज़र उठाई वही शख़्स गुम हुआ,
इस जिस्म के तिलिस्म की बंदिश तो देखिए।

मैं जिसे ओढ़ता-बिछाता हूँ,
वो ग़ज़ल आपको सुनाता हूँ।

एक जंगल है तेरी आँखों में,
मैं जहाँ राह भूल जाता हूँ।

तू किसी रेल-सी गुज़रती है,
मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ।

हर तरफ़ एतराज़ होता है,
मैं अगर रोशनी में आता हूँ।

एक बाजू उखड़ गया जब से,
और ज़्यादा वज़न उठाता हूँ।

मैं तुझे भूलने की कोशिश में,
आज कितने करीब पाता हूँ।

कौन ये फ़ासला निभाएगा,
मैं फ़रिश्ता हूँ सच बताता हूँ।

अब किसी को भी नज़र आती नहीं कोई दरार,
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार।

आप बचकर चल सकें ऐसी कोई सूरत नहीं,
रहगुज़र घेरे हुए मुरदे खड़े हैं बेशुमार।

रोज़ अख़बारों में पढ़कर ये ख़याल आया हमें,
इस तरफ़ आती तो हम भी देखते फ़स्ले-बहार।

मैं बहुत कुछ सोचता रहता हूँ पर कहता नहीं,
बोलना भी है मना, सच बोलना तो दरकिनार।

इस सिरे से उस सिरे तक सब शरीके जुर्म हैं,
आदमी या तो ज़मानत पर रिहा है या फ़रार।

हालते इनसान पर बरहम न हों अहले-वतन,
वो कहीं से ज़िन्दगी भी माँग लाएँगे उधार।

रौनक़े जन्नत ज़रा भी मुझको रास आई नहीं,
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार।

दस्तकों का अब किवाड़ों पर असर होगा ज़रूर,
हर हथेली ख़ून से तर और ज़्यादा बेक़रार।

तुम्हारे पाँवों के नीचे कोई ज़मीन नहीं,
कमाल ये है कि फिर भी तुम्हें यक़ीन नहीं।

मैं बेपनाह अँधेरों को सुबह कैसे कहूँ,
मैं इन नज़ारों का अंधा तमाशबीन नहीं।

तेरी ज़ुबान है झूठी जम्हूरियत की तरह,
तू एक ज़लील-सी गाली से बेहतरीन नहीं।

तुम्हीं से प्यार जताएँ तुम्हीं को खा जायें,
अदीब यों तो सियासी हैं पर कमीन नहीं।

तुझे क़सम है खुदी को बहुत हलाक न कर,
तू इस मशीन का पुर्ज़ा है, तू मशीन नहीं।

बहुत मशहूर है आयें ज़रूर आप यहाँ,
ये मुल्क देखने के लायक़ तो है, हसीन नहीं।

ज़रा-सा तौर-तरीक़ों में हेर-फेर करो,
तुम्हारे हाथ में कालर हो, आस्तीन नहीं।

“ ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा,
मैं सजदे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा।

यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा। ”

ज़िन्दगी में कभी-कभी ऐसा दौर आता है जब तकलीफ़ गुनगुनाहट के रास्ते बाहर आना चाहती है। उसमें फँसकर ग़मे-जानाँ और ग़मे-दौराँ तक एक हो जाते हैं। ये ग़ज़लें दरअसल ऐसे ही एक दौर की देन हैं ।

यहाँ मैं साफ़ कर दूँ कि ग़ज़ल मुझ पर नाजिल नहीं हुई। मैं पिछले पच्चीस वर्षों से इसे सुनता और पसन्द करता आया हूँ और मैंने कभी चोरी-छिपे इसमें हाथ भी आज़माया है। लेकिन ग़ज़ल लिखने या कहने के पीछे एक जिज्ञासा अक्सर मुझे तंग करती रही है और वह है कि भारतीय कवियों में सबसे प्रखर अनुभूति के कवि मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए ग़ज़ल का माध्यम ही क्यों चुना? और अगर ग़ज़ल के माध्यम से ग़ालिब अपनी निजी तकलीफ़ को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं तो मेरी दुहरी तकलीफ़ (जो व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी) इस माध्यम के सहारे एक अपेक्षाकृत व्यापक पाठक वर्ग तक क्यों नहीं पहुँच सकती?

मुझे अपने बारे में कभी मुग़ालते नहीं रहे। मैं मानता हूँ, मैं ग़ालिब नहीं हूँ। उस प्रतिभा का शतांश भी शायद मुझमें नहीं है। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि मेरी तकलीफ़ ग़ालिब से कम है या मैंने उसे कम शिद्दत से महसूस किया है। हो सकता है, अपनी-अपनी पीड़ा को लेकर हर आदमी को यह वहम होता हो...लेकिन इतिहास मुझसे जुड़ी हुई मेरे समय की तकलीफ़ का गवाह ख़ुद है।

बस...अनुभूति की इसी ज़रा-सी पूँजी के सहारे मैं उस्तादों और महारथियों के अखाड़े में उतर पड़ा।

—**दुष्यन्त कुमार** (‘कल्पना’ से साभार)